



CONCEPT OF RUDRA PASHUPATI AMONG BRAHMINS



ब्राह्मणों में रूद्र पशुपति की संकल्पना

Dr. Satendra Kumar Mishra ¹✉

¹ Associate Professor, Amity University, Lucknow Uttar Pradesh, India

DOI: <https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v9.i2.2021.3288>



Article Type: Research Article

Article Citation: Dr. Satendra Kumar Mishra. (2021). CONCEPT OF RUDRA PASHUPATI AMONG BRAHMINS. International Journal of Research -GRANTHAALAYAH, 9(2), 93-98. <https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v9.i2.2021.3288>

Received Date: 20 January 2021

Accepted Date: 24 February 2021

ABSTRACT

English : Seven names of Rudra are also mentioned in the Atharvaveda, which appear to be the principal names of Shiva in the later Shaiva sects. These seven names are - bhava, sharava, pashupati, avid, rudra, mahadev, ishaan. Although it is common that all these Namdhari deities are depicted as different deities. Bhava and Shiva are said to be the deity ruling over animals and humans. No human or deity can escape from their arrows. He is invited to kill Yatu Dhanu (demon) and other evil spirits. The body has been called the arrowhead and Bhava has been called the king. A desire has also been expressed to take the deadly poisons of his arrows to another place. The omnipresence of Rudra has also been shown, while he has been described as eminent in fire, in waters, in herbs and other plants, and is said to have created all creatures. It is also known that the same mantra was used for Rudra in Atharvasiras Upanishad and Sweteshvatara Upanishad. It has also been said to be the Bhootpati and Pashupati of Bhava and Sharva. Five types of animals ie cows, blacks, humans and sheep and azas are mentioned under the authority of Pashupati. Rudra is also depicted as Dikpal. Ugra is said to be the lord of the four directions and the sky, earth and space. A Sukta prayed that Rudra should not spread diseases, poisons and heavenly fire. Bhava is called Ish and Rajan. It is said in one place that Bhava, Sharva and Rudra who is Pashupati are always (Sadasiva) welfare. It has also been said that the Gods made the Bhava with arrows the protector of the vratas and the lord of the east direction. Made the body the lord of the south direction. Made Rudra the lord of the earth. Made Mahadev the lord of the divine world. Made Ishan into space.

Hindi : अथर्ववेद में रूद्र के सात नामों का भी उल्लेख किया गया है, जो उत्तरकालीन शैव सम्प्रदायों में शिव के प्रधान नामों के रूप में आते हैं। ये सात नाम हैं - भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रूद्र, महादेव, ईशान। यद्यपि यह सम्य है कि इन सभी नामधारी देवताओं को विभिन्न देवताओं के रूप में चित्रित किया गया है। भव और शर्व को पशुओं और मानवों पर शासन करने वाला देवता बताया गया है। उनके बाणों से देवता अथवा कोई भी मनुष्य नहीं बच सकता है। उन्हें यातु धानु (राक्षस) तथा अन्य बुरी आत्माओं को मारने के लिए आमन्त्रित किया गया है। शर्व को बाण चलाने वाला कहा गया है और भव को राजा कहा गया है। इस बात की भी इच्छा प्रकट की गई है कि वे अपने बाणों के घातक विषों को दूसरे स्थान पर ले जाएँ। 67 रूद्र ने इन देवताओं को आत्मसात् कर लिया तथापि रूद्र के यही आठ देवरूप पौराणिक शिवके आठ रूपों में समा सकते हैं। रूद्र की सर्वव्यापकता को भी दिखाया गया है, जबकि उसे अग्नि में, जलों में, जड़ी-बूटियों तथा अन्य पौधों में प्रतिष्ठ बताया गया है और कहा है कि सभी जीवों को इन्होंने ही बनाया है। यह भी द्रष्टव्य है कि यही मन्त्र अथर्वसिरस उपनिषद् और श्वेताश्वतर उपनिषद् में रूद्र के लिए प्रयुक्त हुआ। भव और शर्व का भूतपति और पशुपति भी कहा गया है।

पाँच प्रकार के पशुओं अर्थात् गायों, अश्वों, मनुष्यों और भेड़ों तथा अर्जों को पशुपति के अधिकार में बताया गया है। रूद्र को दिक्पाल के रूप में भी चित्रित किया गया है। उग्र को चारों दिशाओं तथा आकाश, पृथ्वी एवं अंतरिक्ष का स्वामी बताया गया है। एक सूक्त में प्रार्थना की गई है कि रूद्र व्याधियों, विषों और स्वर्गीय अग्नि को न फैलाए। भव को ईश तथा राजन कहा गया है। एक स्थान में कहा गया है कि भव, शर्व और रूद्र जो पशुपति है, सदैव (सदाशिव) कल्याणकारी हैं। यह भी कहा गया है कि देवताओं ने बाण चलाने वाले भव को ब्राह्मणों का रक्षक बनाया और पूर्व दिशा का स्वामी बनाया। शर्व को दक्षिण दिशा का स्वामी बनाया। रूद्र को पृथ्वी लोक का स्वामी बनाया। महादेव को दिव्यलोक का स्वामी बनाया। ईशान को अन्तरिक्ष बनाया।

Keywords: ब्राह्मणों; पशुपति

1. प्रस्तावना

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अथर्ववेद में रूद्र के भयावह रूप को पूर्ववत् रखा गया और उससे मुक्ति पाने के लिए अनेक प्रार्थनायें और अर्चनायें की गई हैं, किन्तु इसके साथ-साथ उसके सदाशिव रूप का विकास भी प्रारम्भ हो गया था। पाशुपत सम्प्रदाय में शिव की जो अष्टमूर्ति की कल्पना है, उसमें से सात नाम तो अथर्ववेद में देखने को मिलते हैं - भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रूद्र, महादेव और ईशान। इस प्रकार पाशुपतों ने देव की जो कल्पना की थी, वह इस सृष्टि का कारण है, सर्वव्यापक है, उसका भव बीजरूप में अथर्ववेद में देखने को मिलता है। पाशुपतों की अनेक परम्पराओं का प्रारम्भ भी रूप में अथर्ववेद में हो जाता है।

तैत्तिकीय संहिता तथा अजयमेयि संहिता के शतरूद्रिय में रूद्र-षिव के व्यक्तित्व का और अधिक विकास किया गया है। अनेक कल्याणकारी और विनाशकारी रूपों को स्वतन्त्र रूप में देखा गया है। उसे 'गिरीष' अथवा 'गिरित्र' कहा गया है। इसे मार्गों और वनों, पर्वतों का स्वागी कहा गया है और इन स्थानों में घूमनेवाला भी बताया गया है। उसे चोरों तथा समाज बहिष्कृत लोगों का देवता भी बताया गया है। उसके विध्वंसक रूप का प्रकटीकरण अनेक उपाधियों एवं पक्षों से होता है; जैसे किवि, द्रोत्रत्यि। द्रयम्बकहोम के विष्लेषण से भी उसके विध्वंसक स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। अपने 'भेषज स्वरूप' में उसे स्वर्ग का महान वैद्य कहा गया है। वह पशुओं का भी पति कहा गया है। रूद्र का प्रभाव क्षेत्र इतना व्यापक हो गया था कि उसे दिशाओं का पति भी कहा जाने लगा, उसे 'कपर्देन' भी कहा गया है, जिसका अर्थ है 'जटाजूट' धारण करने वाला। अग्नि से अन्यता के कारण सम्भवतः यह उपाधि उसे मिली थी। शर्व और भय नाम भी उसे दिए गए हैं। इसका भयावह स्वरूप जब सन्तुष्ट हो जाता है तब वह शंकर, शिव और शम्भु हो जाता है। इसे पशुचर्म भी पहने हुए बताया गया है और कृत्रिम वसाननः कहा गया है। सम्भवतः वनों और वनवासियों से सम्बन्धित होने के कारण सम्भवतः उसे पशुचर्म पहनने वाला (कृतिवाआ) कहा गया है। रूद्र को एक भयावह आत्मा के रूप में भी चित्रित किया गया है। उसे गण और गणपति कहा गया है। गणपति नाम महत्वपूर्ण है जो कि यह प्रकट करता है कि रूद्र के व्यक्तित्व में अनेक गणों के देवता की भावना का समावेश हुआ था जो सम्भवतः अनार्य थे। वाजसनेयि संहिता में तो उसे स्वयं चोर, धोखेबाज आदि की संज्ञा दी गई। यजुर्वेद में रूद्र का एक नया नाम त्रयम्बक दिया गया है, जिसके आधार पर पौराणिक षिव के त्रिनेत्र की कल्पना की गई। ऐसा प्रतीत होता है कि यजुर्वेद की रचना के समय तक रूद्र में किसी अनार्य देवता के व्यक्तित्व का समावेश हो गया था जो अनार्य पर्वतवासियों का आराध्य था, इसी कारण से गिरित्र, गिरीष, गिरिचर, गिरिषय, वनानापति कहा गया है। सम्भवतः इस वर्ग के लोग कृषक और वैश्य थे, इसी कारण रूद्र को क्षेत्रपति और वणिक कहा गया है। इसी कारण इसका सम्बन्ध एक स्त्री देवी अम्बिका से किया गया।

ब्राह्मणों में रूद्र पशुपति की संकल्पना में और आगे विकास हुआ। रूद्र-षिव के विध्वंसात्मक स्वरूप का और भी अधिक विकास किया गया। देवता उनसे भयभीत होते हैं। रूद्र की उत्पत्ति सब देवताओं के उग्र वर्षों के सम्मिश्रण से हुई। घोर और क्रूर उपाधियाँ दी गई। उनके भयावह स्वरूप से लोग इतने त्रस्त थे कि उन्हें अन्य देवताओं से अलग कर दिया गया। शेवगत के साम्प्रदायिक विकास के दृष्टिकोण से जो सबसे महत्वपूर्ण प्रवृत्ति ब्राह्मणों में आई वह है रूद्र पाशुपति के अष्ट नामों का विकास। शतपथ ब्राह्मण और कौषीतकि ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जन्मोपरान्त, रूद्र को प्रजापति ने आठ नाम दिए, जिनमें सात तो वही हैं जो अथर्ववेद में आते हैं, किन्तु आठवाँ नाम 'अंषभि' है, जिससे अभिप्राय है - रूद्र के वज्रपात से। अथर्ववेद में सातों नामधारी देवताओं को अलग-अलग देवत्व प्रदान किया गया है। किन्तु ब्राह्मणों में इन सभी को पशुपति के विभिन्न पक्षों का प्रतीक माना गया है। इनमें रूद्र, शर्व, उग्र और अषनि को प्रकृति के भयावह पक्ष का प्रतीक माना है। भव,

पशुपति, महादेव और ईषान को प्रकृति के कल्याणगारी तत्वों का प्रतिनिधि माना है। इस प्रकार ब्राह्मण काल में शैवमत की विचारधारा साम्प्रदायिकता की ओर तीव्रगति से बढ़ रही थी, क्योंकि रूद्र शिव की सर्वश्रेष्ठता का सिद्धान्त ब्राह्मणों में कुछ वर्गों में निश्चित रूप से स्वीकार किया जा रहा था।

वेबर महोदय ने बहुत पहले ही कहा था कि कौषीतकि ब्राह्मण में रूद्र को ईषान और महादेव की जो उपाधियाँ दी गई हैं वे स्पष्ट रूप से अन्य देवताओं की तुलना में रूद्र देवता के विशेष महत्ता की ओर संकेत करती हैं और वस्तुतः साम्प्रदायिक पूजा की ओर भी संकेत करती हैं। आफ्रिच्ट महोदय ने भी यह मत प्रकट किया है कि ब्राह्मणों का काल ही प्राचीन बहुदेववाद के पतन का काल है और शैव मत नामक नवीन धर्म के उत्थान का भ समय है। इन विद्वानों के मतों को हम पूर्णरूपेण तो स्वीकार नहीं कर सकते हैं, क्योंकि ब्राह्मण-काल में साम्प्रदायिक विचारधारा के तत्वों में सर्वश्रेष्ठता तो अवश्य देखने को मिलती है, किन्तु अन्य तत्वों का अभाव है; जैसे - शैव, वैष्णव तथा अन्य साम्प्रदायिक विचारधाराये भक्ति पर आधारित थीं, पूजा उनकी विधि थी। प्रासाद और आत्मसमर्पण उसके प्राण थे। ब्राह्मणों में इन तत्वों का लगभग अभाव- सा है। वे तो यज्ञों के वातावरण से आच्छादित हैं।

ब्राह्मणों में रूद्र-शिव अन्य वैदिक देवताओं से पृथक हो गए थे। 'गवेधुक होम' में कहा गया है कि जिस समय देवगण स्वर्ग गए उस समय रूद्र को पीछे छोड़ दिया, इसलिए उन्हें 'वास्तव्य' (जो घर पर रहे) की उपाधि दी गई। अन्तः में यह भी कहा गया है कि पहले देवताओं ने पशुओं को आपस में विभाजित कर लिया, किन्तु रूद्र का ध्यान नहीं रखा, परन्तु भयभीत होकर उन्हें मूषक समर्पित किया। इसके अतिरिक्त प्रजापति को सरस्वती के प्रति अगम्य गमन के लिए दण्ड देने निमित्त रूद्र को ही नियुक्त किया गया, क्योंकि वह अन्य देवताओं से पृथक थे। रूद्र की सर्वव्यापकता का सिद्धान्त ब्राह्मणों में उस स्थान पर प्रकट किया गया है, जब रूद्र ने विष्व की प्रत्येक वस्तु को अपना बताया। रूद्र के इस पृथक स्वभाव को कम करने के लिए पुरातन शास्त्र सम्मत वर्ग ने रूद्र और अग्नि के प्राचीन तादात्म्य पर पुनः जोर दिया, दूसरे इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक कथाएँ गढ़ी। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शैव धर्म में पाषुपत सम्प्रदाय के आठ नामों की परम्परा का आविर्भाव उस समय हो चुका था।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् में शैव मत की साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि पूर्णतया परिलक्षित होती है। रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने यह मत प्रकट किया है कि उपनिषद् की रचना साम्प्रदायिक भावना को लेकर नहीं हुई है। यद्यपि वह यह स्वीकार करते हैं कि इस उपनिषद् में पूर्ण विकसित रूप में ईश्वरवाद का विकास हुआ, जिसका केन्द्र है एक सात्मक परमेश्वर। उनके मतानुसार 'श्वेताश्वेतर उपनिषद्' भक्ति परम्परा के द्वार पर खड़ा हुआ है, जिसकी भक्ति का पात्र है रूद्र-शैव। भण्डारकर के मत को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि श्वेताश्वेतर उपनिषद् में एक सम्प्रदाय की जितनी विषिष्टतायें होती हैं, वे सभी कुछ प्रच्छन्न रूप से समाविष्ट मिलती हैं। जैसे रूद्र-शिव की सर्वश्रेष्ठता और सर्वोच्चता। यह तर्क कि उसे केवल देव की उपाधि दी गई है। अतएव यह असाम्प्रदायिक है, उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इस देवता का तादात्म्य रूद्र-शिव, ईषान, महेश्वर से कई बार किया गया है। उसकी शक्ति को 'ईषानी' कहा गया है। उसके समल और निष्कल दोनों रूपों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। उसे सृष्टि का कारण एवं स्वामी कहा गया है। जो सर्वोच्च ब्राह्मण है, जो अन्तर्यामी है, जो अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र एवं अन्य तत्वों का ही रूप है। महेश्वरको माया का प्रयोग करते हुए बताया गया है। एक स्थान पर कहा गया है कि ईषान जननेन्द्रिय का अध्यक्ष है, उसी में सभी तत्व सन्निहित हैं और उसी से सभी वस्तुएं निकलती हैं। शिव जो सृष्टि का कर्ता है, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर है, अनेक रूपों वाली है, समस्त सृष्टि में व्याप्त है, उसको जानने से ही मोक्ष मिलता है, उसी में भक्ति करने से मनुष्य मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

सांख्य और योग के माध्यम से उसे जाना जा सकता है और अन्त में कहा गया है कि आत्मसमर्पण से मोक्ष मिलता है, क्योंकि इसी परमेश्वर ने ब्राह्मदेव को उत्पन्न किया, इसी ने वेदों को प्रकट किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्वेताश्वेतर उपनिषद् में शैवमत की साम्प्रदायिक विचारधारा का उदार रूप से विवरण प्रस्तुत किया गया है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् प्राचीन उपनिषदों की परम्परा में आता है। (यद्यपि उसमें सबसे बाद का है।) अतएव उसने अन्य प्राचीन उपनिषदों के सामान्य ज्ञान पर जोर तो दिया, किन्तु भक्ति से अछूता नहीं रह सका। यह द्रष्टव्य है कि पाषुपत सम्प्रदाय में कुछ मूलभूत सिद्धान्त थे; जैसे परमेश्वर का ज्ञानयोग आदि को विशेष स्थान दिया गया है। किन्तु भक्ति आत्मसमर्पण आदि को ही रूद्र सायुज्य का साधन बताया गया है। तुलनात्मक अध्ययन से प्रकट होता है कि श्वेताश्वेतर उपनिषद् के देव और पाषुपत सम्प्रदायों के परमेश्वर की अवधारणा में साम्यता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्वेताश्वेतर उपनिषद् पाषुपत-सम्प्रदाय से अवगत था, जो समाज में इस समय प्रचलित हो चुका था, किन्तु यह उपनिषद् उसका प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख नहीं करता है, यद्यपि उसके सिद्धान्तों को उपनिषद्

की विचारधारा में समन्वित करना चाहता है। यह विशेष महत्व की बात है कि उत्तरकाल में पाषुपत-सम्प्रदाय में एक वर्ग ऐसा था, जो वेद सम्मत पाषुपत विचारधारा के आविर्भाव का श्रेय श्वेताचार्य को देता है, जिन्हें यह शिव का उवातार मानता है। यह तथ्य कूर्म पुराण में उल्लिखित है। इस उपनिषद् के श्वेताश्वेतर नाम और कूर्म पुराण के श्वेताचार्य में साम्यता महत्वपूर्ण है। यह भी द्रष्टव्य है कि वैदिक साहित्य में रूद्र को जहाँ सदैव रक्तवर्ण कहा गया है, वहाँ उन्हें कभी-कभी श्वेत वर्ण का भी कहा गया है।¹¹ यह साम्यतायें आकस्मिक नहीं मानी जा सकती हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि श्वेताश्वर उपनिषद् जान-बूझकर पाषुपत-सम्प्रदाय का प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख नहीं करना चाहता था, उसके सिद्धान्तों को अपनाकर वैदिक विचारधारा का शक्ति प्रदान करना चाहता था।

उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट होता है कि वैदिक साहित्य ने शैव सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी और इसी पृष्ठभूमि में शैव धर्म के प्रथम सम्प्रदाय पाषुपत का आविर्भाव हुआ। किन्तु पाषुपत सम्प्रदाय तथा शैव-धर्म वैदिक परम्परा की ही एकमात्र फसल नहीं थी, अपितु अनार्य परम्पराओं का भी इस पर प्रचुर प्रभाव पड़ा था, जिसका अवलोकन स्वतन्त्र रूप से वांछनीय है।

2. अनार्य परम्परा का प्रभाव

शैव धर्म की उत्पत्ति का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत अनार्य परम्परा को माना जा सकता है।

3. सैन्धव सभ्यता का योगदान

सैन्धव सभ्यता में अनार्य परम्परा की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। सैन्धव सभ्यता से अनेक ऐसी चित्रकृति शालों पर अंकित है जिन्हें तात्कालिक धार्मिक विचारधारा से सम्बद्ध किया जा सकता है। यद्यपि यह सत्य है कि सैन्धव लिपि का जब तक सन्तोषजनक ढंग से पठन नहीं हो जाता, तब तक निष्चयात्मक रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता, तथापि प्राप्त साक्ष्यों एवं उपलब्ध विश्लेषणों के आधार पर इतना तो अनुमान लगाया ही जा सकता है कि मातृदेवी के साथ-साथ इस सभ्यता के लोग एक पुरूष देवता के उपासक थे। जिसे मार्शल ने शिव का पूर्व रूप माना है। यह वांछनीय है कि इस देवता के स्वरूप का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया जाए और यह देखा जाए कि शैव धर्म के पाषुपत-सम्प्रदाय की विचारधारा किसी रूप में इसके प्रच्छन्न है अथवा नहीं है। एक चित्रकृति में इस पुरूष देवता को तीन मुख वाला दिखलाया गया है वह एक श्रृंग युक्त पगड़ी धारण किए हुए पद्मासन मुद्रा में एक सिंहासन पर आसीन है एवं ऊर्ध्वरेतस् रूप में है और उसके दोनों ओर ऐ व्याघ्र, एक हाथी, एक गैंडा और एक भैंसा प्रदर्शित किया गया है। उसके सिंहासन के नीचे दो हिरण दिखाए गए हैं। यह अपने हाथ में अधिसंख्यक चूड़ियाँ पहने हुए हैं, इसके गले के चारों ओर कवच अथवा उर्षत्राण है। इस चित्रण में अनेक विद्वानों ने शैव-धर्म की तीन विचारधाराएँ देखने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक शिव के समान यह त्रिमुख, पशुपति और योगीश्वर है अथवा महायोगी है। पद्मासन मुद्रा और चक्षुओं को नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित होने से महायोगी पक्ष पर प्रकाश है। यह भी द्रष्टव्य है कि इस चित्र में कवच शिव के उस रूप का स्मरण दिलाता है, जिसमें वह बाणों से दूसरों का वध करता है, किन्तु स्वयं अजेय है और इस प्रकार उसके सर्वोच्च स्वरूप का उद्घाटन प्रतीकात्मक ढंग से किया गया है।

4. निष्कर्ष

यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि जबकि हम उसे दूसरे चित्र में इस पुरूष देवता को एक धनुर्धारी षिकारी के रूप में देखते हैं। उराका यह रूप वैदिक साहित्य, महाभारत और पुराण में बहुधा देखने को मिलता है। किरातार्जुनीय में तो शिव इसी रूप में दिखाए गए हैं। उत्तर-पश्चिम भारत में निवास करने वाली अनेक आदिम जातियों जैसे शिव आदि भी शिव को षिकारी रूप में ही देखते थे। पाषुपत-सम्प्रदाय में भी शिव के षिकारी स्वरूप का स्मरण बार-बार किया गया है। यहाँ से अन्य मोहरें भी उपलब्ध हुई हैं, एक में तो वह लगभग नग्न हैं। केवल कटि प्रदेश में थोड़ा-सा वस्त्र है और सिर पर सींग वाली पगड़ी भी है। एक दूसरी शील में वह पुनः त्रिमुख हैं जबकि दूसरी शील में एक मुख है, किन्तु सींगों के बीच सिर से निकलती हुई पत्तियाँ दिखलाई गई हैं। भारत के पूर्व ऐतिहासिक कलाओं में कुछ पुरूषाकृतियाँ ऐसी मिली हैं जो धनुर्धर हैं, सींगोवाली पगड़ियों से युक्त हैं

और पूरे शरीर से अथवा केवल सिर में पत्तियाँ पहने हुए हैं। इस चित्रण का प्रतीकात्मक अर्थ यह निकाला जा सकता है कि यह पुरुष देवता प्रकृति की उर्वराशक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, यह पक्ष ऊर्ध्वरेतस् मुद्रा से भी प्रकट होता है। यह भी द्रष्टव्य है कि सैन्धव सभ्यता में लिंगोपासना के भी कुछ प्रमाण मिले हैं। कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद में आए हुए षिष्णः देवा से अभिप्राय सैन्धववासियों से ही लगाया है, जो लिंगोपासक थे।

ज्ञान की वर्तमान अवस्था में यह कहना कठिन है कि मातृदेवी की इस पुरुष देवता से क्या सम्बन्ध था, किन्तु पाषुपत-सम्प्रदाय की उत्पत्ति के दृष्टिकोण से ज्ञान की वर्तमान अवस्था में यह कहना कठिन है कि मातृदेवी का इस पुरुष देवता से क्या सम्बन्ध था, किन्तु पाषुपत-सम्प्रदाय की उत्पत्ति के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि सामान्य रूप से शैव सम्प्रदाय और विशेष रूप से पाषुपत-सम्प्रदाय की अनेक प्रवृत्तियों का बीजारोपण यहाँ के आदिवासियों के जीवन में हो गया था और विशेष रूप से सैन्धव सभ्यता में एक पुरुष देवता की पूजा का विधान था जो पाषुपति था, महायोगी था। सृष्टि के क्रियात्मक शक्ति का प्रतीक था, त्रिमुख था। यह सभी प्रवृत्तियाँ पाषुपत-सम्प्रदाय में पायी जाती हैं। आर्यों और अनार्यों के सम्पर्क से वैदिक रुद्र और सैन्धव सभ्यता के महायोगी पशुपति से सामंजस्य हुआ। इसके प्रमाण वैदिक साहित्य, महाभारत तथा पुराणों में देखे जा सकते हैं।

SOURCES OF FUNDING

None.

CONFLICT OF INTEREST

None.

ACKNOWLEDGMENT

None.

REFERENCES

- [1] दि काम्प्रेहिन्सिव ऑफ़ इण्डिया, भाग 2, पृ. 399।
- [2] पाण्डेय जी.सी., वही, पृ. 301-309।
- [3] श्रीवास्तव वी.सी., द एण्टीक्यूटी ऑफ़ दी पाषुपत सेक्ट, के.सी. चठोपाध्याय मेमोरियल वाल्यूम, पृ.124-125, कल्चरल हेरीटेज ऑफ़ इण्डिया, भाग-1, पृ. 389-399।
- [4] भण्डारकर आर.जी., वही, पृ. 103
- [5] इन विशेषताओं के लिए द्रष्टव्य शतरूद्रिय सुक्त, तैत्तिरीय संहिता, 4/5/1 वाजसनेयि संहिता, अध्याय-16।
- [6] वाजसनेयि संहिता, 3/58 शतपथ ब्राह्मण 2/6/2/9
- [7] यदुवंशी, शैवमत, पृ. 13-17 86. वाजसनेयि संहिता, 3/5 87. यदुवंशी, शैवमत, पृ. 17-20
- [8] शतपथ ब्राह्मण, 9/4/1/1-5 पंचविंश ब्राह्मण, 6/9/7, कौषीतकि ब्राह्मण, 3/4
- [9] एतरेय, ब्राह्मण, 3/33/1, 3/8/9, शतपथ ब्राह्मण 9/1/1/6/1 तलवाकार ब्राह्मण, 3/26/1।
- [10] तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3/2/5
- [11] शतपथ ब्राह्मण 1/7/3, 1-8, 9/1/1/5, तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/6/10
- [12] भण्डारकर, आर.जी., वही, पृ. 108
- [13] शतपथ ब्राह्मण, 6/1/3/7, कौषीतकि ब्राह्मण 6/1/9
- [14] भण्डारकर, आर.जी., वही, पृ. 105
- [15] यदुवंशी, शैवमत, पृ. 20, कौषीतकि ब्राह्मण, 23/3 में रुद्र को वेवाधिपति कहा गया है। ईषान ओर महादेव ब्राह्मण ग्रन्थों में उसके सामान्य नाम हैं। रुद्र की श्रेष्ठता ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित दो अन्य कथाओं से भी होती है - (1) प्रजापति की सरस्वती के प्रति गमन की कथा (2) नामोनेधिष्ठ की कथा। यह दोनों कथाएँ ऐतरेय ब्राह्मण में क्रमशः 3/13/9 और 5/22/9 में मिलती हैं। प्रजापति सरस्वती आख्यान का रूपान्तर जेमिनीय ब्राह्मण 3/261/63 में मिलता है।

- [16] श्वेताश्वेतर उपनिषद्- 65/21 में कहा गया है कि श्वेताश्वेतर ने ब्रह्म तत्व को संन्यासियों को बताया।
तपः प्रभावादेवप्रसादाच्च ब्रह्म
ह श्वेताश्वेतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्यः परम पवित्रं
प्रोवाच सम्यगृषिसंधजुषुम्॥
- [17] दीवान, पी.सी. लकुलीष ऑफ़ कारवाण एण्ड शिव पाषुपत सेक्ट, जर्नल ऑफ़ दि गुजरात रिसर्च सोसाईटी, भाग (1955) संस्था 4, पृ. 267-274। इस विद्वान ने श्वेताश्व को ही पाषुपत-सम्प्रदाय का आदि आचार्य माना ह
- [18] संकालिया, एच डी, प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया मार्शल, सर जॉन, वही, भाग-1, पृ. 52
- [19] पुलाषकार ए.डी. 6 वैदिक ऐज पृ 190, यदुवंशी, शैवमत, अध्याय 2, सुल्लीवान एच.पी., ए रिक्जामिनेषन ऑफ़ दि रिलीजन ऑफ़ द इण्डस सिविलाइजेशन, दि हिस्ट्री ऑफ़ रिलीजन्स भाग 4, 1 (1964) ने इस पहचान को नहीं माना हैकिन्तु उसके तर्क न्यायसंगत नहीं है।